International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)

E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

आर्थिक विचार और भारतीय ज्ञान प्रणाली: दार्शनिक आधार, संस्थागत विकास और समकालीन प्रासंगिकता

अर्चना पाण्डेय

असिस्टेंट प्रोफेसर- अर्थशास्त्र
डॉ. राम मनोहर लोहिया राजकीय महिला महाविद्यालय, आँवला, बरेली, उत्तर प्रदेश

सार
भारतीय ज्ञान प्रणाली में आर्थिक चिंतन केवल धन-संचय या उत्पादन-वितरण के तकनीकी सिद्धांतों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह धर्म, नैतिकता, राज्य-व्यवस्था, सामाजिक न्याय और पर्यावरणीय संतुलन से जुड़ा एक समग्र वैचारिक ढाँचा प्रस्तुत करता है। इस अध्याय का उद्देश्य भारतीय आर्थिक विचार की दार्शनिक जड़ों, शास्त्रीय ग्रंथों में वर्णित सिद्धांतों, संस्थागत संरचनाओं तथा आधुनिक संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता का विश्लेषण करना है। वेदों और उपनिषदों में निहित संतुलित उपभोग की अवधारणा, अर्थशास्त्र में प्रतिपादित राज्य-नियंत्रित अर्थनीति, श्रेणी-व्यवस्था की विकेंद्रीकृत आर्थिक संरचना, तथा ग्राम-आधारित आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था भारतीय चिंतन की विशिष्टताओं को रेखांकित करती हैं। साथ ही, महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित ट्रस्टीशिप सिद्धांत भारतीय परंपरा की नैतिक अर्थव्यवस्था को आधुनिक संदर्भ में पुनर्परिभाषित करता है। अध्याय यह प्रतिपादित करता है कि भारतीय आर्थिक दृष्टिकोण समावेशी, सतत और नैतिक विकास की दिशा में महत्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रदान कर सकता है।

प्रमुख शब्द: भारतीय ज्ञान परंपरा, अर्थशास्त्र, कौटिल्य, लोककल्याण, सतत विकास, आर्थिक नैतिकता

प्रस्तावना
भारतीय ज्ञान प्रणाली (Indian Knowledge System) बहुआयामी है, जिसमें दर्शन, विज्ञान, कला, साहित्य, चिकित्सा और राज्यशास्त्र के साथ-साथ आर्थिक चिंतन भी समाहित है। भारतीय परंपरा में अर्थशास्त्र को स्वतंत्र, यांत्रिक या शुद्ध भौतिक अनुशासन के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि इसे मानव जीवन की नैतिक और आध्यात्मिक संरचना का अंग माना गया। भारतीय जीवन-दर्शन में चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—मानव जीवन के उद्देश्यों को निर्धारित करते हैं। इनमें अर्थ को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, किंतु वह धर्म के अधीन है। यह व्यवस्था इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि आर्थिक गतिविधि का अंतिम उद्देश्य केवल संपत्ति-संचय नहीं, बल्कि सामाजिक संतुलन और मानवीय उत्कर्ष है। पश्चिमी आर्थिक चिंतन, विशेषकर औद्योगिक क्रांति के बाद, उत्पादन वृद्धि, पूँजी संचय और बाज़ार-आधारित प्रतिस्पर्धा पर केंद्रित रहा है। इसके विपरीत भारतीय दृष्टिकोण में अर्थव्यवस्था को नैतिकता और सामाजिक दायित्व के साथ जोड़ा गया। इस अध्याय में हम भारतीय आर्थिक विचार की ऐतिहासिक यात्रा का विश्लेषण करेंगे, उसके दार्शनिक आधारों को समझेंगे तथा आधुनिक वैश्विक संदर्भ में उसकी प्रासंगिकता का परीक्षण करेंगे।

भारतीय ज्ञान परंपरा की अवधारणा
भारतीय ज्ञान परंपरा का विकास हजारों वर्षों के अनुभव और चिंतन के आधार पर हुआ है। यह परंपरा वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, पुराणों और महाकाव्यों में परिलक्षित होती है। भारतीय ज्ञान प्रणाली की विशेषता यह है कि यह ज्ञान को केवल सैद्धांतिक रूप में नहीं देखती बल्कि उसे जीवन के व्यवहारिक पक्ष से जोड़ती है। इसका उद्देश्य व्यक्ति और समाज दोनों का समग्र विकास करना है (Singh, 2018)। भारतीय ज्ञान परंपरा में आर्थिक गतिविधियों को नैतिक मूल्यों और सामाजिक जिम्मेदारियों के साथ जोड़ा गया है। इस दृष्टिकोण के कारण भारतीय आर्थिक विचारधारा में सामाजिक न्याय और लोककल्याण को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ।

प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्र की संरचना
प्राचीन भारत में अर्थशास्त्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ कौटिल्य का अर्थशास्त्र माना जाता है। इसमें राज्य की आर्थिक नीतियों, प्रशासनिक व्यवस्था, कर प्रणाली, व्यापार और कृषि के विकास से संबंधित विस्तृत जानकारी मिलती है।कौटिल्य के अनुसार राज्य का मुख्य उद्देश्य प्रजा का कल्याण है। उन्होंने कहा कि एक समृद्ध राज्य वही है जिसमें जनता सुखी और सुरक्षित हो।

कौटिल्य ने आर्थिक प्रशासन के निम्न प्रमुख तत्वों पर बल दिया:
कृषि को अर्थव्यवस्था का आधार बनाना
व्यापार और उद्योग को प्रोत्साहन देना
न्यायपूर्ण कर व्यवस्था लागू करना
संसाधनों का प्रभावी प्रबंधन करना
राज्य द्वारा आर्थिक गतिविधियों का नियमन करना
इन सिद्धांतों से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्र में आर्थिक नीतियों का उद्देश्य केवल राज्य की आय बढ़ाना नहीं बल्कि समाज के समग्र विकास को सुनिश्चित करना था।

भारतीय ज्ञान परंपरा में आर्थिक नैतिकता

भारतीय ज्ञान परंपरा में आर्थिक गतिविधियों को नैतिक मूल्यों से जोड़कर देखा गया है। वेदों और उपनिषदों में धन को आवश्यक माना गया है, किंतु उसके अर्जन और उपयोग में धर्म का पालन करने पर बल दिया गया है।
"सर्वे भवन्तु सुखिनः" की अवधारणा भारतीय आर्थिक विचारधारा में सामाजिक समानता और न्याय की भावना को दर्शाती है। इसका अर्थ है कि आर्थिक व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे समाज के सभी वर्गों को लाभ प्राप्त हो। महाभारत और अन्य प्राचीन ग्रंथों में भी यह उल्लेख मिलता है कि धन का उपयोग समाज के हित में होना चाहिए ।

दार्शनिक आधार: धर्म और अर्थ का संबंध

भारतीय चिंतन में धर्म केवल धार्मिक आचरण नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक नैतिकता का व्यापक सिद्धांत है। अर्थ की प्राप्ति धर्मसम्मत होनी चाहिए—यह विचार आर्थिक व्यवहार को नैतिक अनुशासन प्रदान करता है। उपनिषदों में व्यक्त "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" का संदेश संयमित उपभोग और संसाधनों के संतुलित उपयोग की प्रेरणा देता है। यह दृष्टिकोण अनियंत्रित उपभोक्तावाद के विपरीत है और संसाधनों के संरक्षण की भावना को प्रोत्साहित करता है। वेदों में कृषि, पशुपालन और व्यापार के संकेत मिलते हैं, जो दर्शाते हैं कि आर्थिक गतिविधि सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग थी। संपत्ति का वितरण सहयोगात्मक था और सामुदायिक हित को प्राथमिकता दी जाती थी। इस प्रकार, भारतीय आर्थिक चिंतन की नींव सामूहिकता और संतुलन पर आधारित रही।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र और राज्य की भूमिका

अर्थशास्त्र भारतीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था का प्राचीन और व्यवस्थित ग्रंथ है, जिसकी रचना कौटिल्य ने की। इस ग्रंथ में राज्य की भूमिका अत्यंत सक्रिय और संगठित दिखाई देती है। राज्य को बाजार की निगरानी, मूल्य नियंत्रण, कर-व्यवस्था और सार्वजनिक उद्योगों के संचालन का दायित्व सौंपा गया था। कर नीति के संबंध में कौटिल्य ने मध्यमार्ग का समर्थन किया और कहा कि कराधान ऐसा होना चाहिए जिससे उत्पादक वर्ग पर अत्यधिक भार न पड़े। अर्थशास्त्र में सामाजिक सुरक्षा, आपदा प्रबंधन और सार्वजनिक कल्याण की स्पष्ट अवधारणाएँ मिलती हैं। राज्य केवल कर-संग्रहकर्ता नहीं, बल्कि प्रजा के कल्याण का संरक्षक है। यह दृष्टिकोण आधुनिक कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की पूर्वपीठिका के रूप में देखा जा सकता है।

श्रेणी व्यवस्था और आर्थिक विकेंद्रीकरण

प्राचीन भारत में श्रेणियाँ आर्थिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग थीं। ये कारीगरों और व्यापारियों के स्वायत्त संगठन थे, जो गुणवत्ता नियंत्रण, मूल्य निर्धारण और सदस्यों की सुरक्षा का कार्य करते थे। श्रेणियों के पास अपनी न्याय-व्यवस्था भी थी, जिससे विवादों का समाधान स्थानीय स्तर पर हो जाता था। यह प्रणाली विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था का उदाहरण है, जिसमें राज्य और समाज दोनों की सहभागिता थी। श्रेणी व्यवस्था ने व्यापार को संगठित किया और अंतरराष्ट्रीय वाणिज्य, विशेषकर रेशम मार्ग (Silk Route), के माध्यम से भारत को वैश्विक अर्थव्यवस्था से जोड़ा। यह दर्शाता है कि भारतीय आर्थिक संरचना न केवल आत्मनिर्भर थी, बल्कि वैश्विक संपर्क में भी सक्रिय थी।

ग्राम-आधारित अर्थव्यवस्था और गांधीवादी पुनर्पाठ

भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार ग्राम था। ग्राम स्वावलंबी इकाई के रूप में कार्य करता था, जिसमें कृषि, कुटीर उद्योग और हस्तशिल्प का समन्वय था। इस मॉडल को आधुनिक संदर्भ में महात्मा गांधी ने पुनर्जीवित किया। गांधीजी ने ग्राम स्वराज और ट्रस्टीशिप सिद्धांत के माध्यम से नैतिक पूँजीवाद की अवधारणा प्रस्तुत की। उनके अनुसार, संपन्न व्यक्ति अपने संसाधनों का उपयोग समाज के कल्याण हेतु करें। गांधीवादी दृष्टिकोण में उत्पादन का उद्देश्य अधिकतम लाभ नहीं, बल्कि अधिकतम

रोजगार और सामाजिक न्याय है। यह विचार वर्तमान समय में समावेशी विकास और सामाजिक उत्तरदायित्व की अवधारणा के अनुरूप है।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण और सतत विकास

भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रकृति को पूजनीय माना गया है। जल, वन और भूमि के संरक्षण को नैतिक कर्तव्य समझा गया। कृषि पद्धतियों में फसल चक्र और जल-संचय की परंपराएँ पर्यावरण-संतुलन की गवाही देती हैं। आधुनिक संदर्भ में जब जलवायु परिवर्तन और संसाधन-क्षय की समस्या गंभीर है, भारतीय दृष्टिकोण सतत विकास का मार्ग सुझाता है।

आधुनिक संदर्भ में भारतीय आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता

यद्यपि भारतीय आर्थिक चिंतन में अनेक प्रगतिशील तत्व हैं, तथापि कुछ सीमाएँ भी रही हैं, जैसे जाति-आधारित पेशागत संरचना और औद्योगिक नवाचार की सीमित गति। समकालीन अध्ययन में इन बिंदुओं का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण आवश्यक है, ताकि परंपरा और आधुनिकता का संतुलित समन्वय स्थापित किया जा सके। आज के वैश्विक आर्थिक परिदृश्य में अनेक चुनौतियाँ सामने हैं, जैसे आर्थिक असमानता, पर्यावरणीय संकट और सामाजिक असंतुलन। इन समस्याओं के समाधान के लिए भारतीय ज्ञान परंपरा के सिद्धांत उपयोगी मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं।भारतीय आर्थिक चिंतन यह बताता है कि विकास केवल आर्थिक वृद्धि तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि उसमें सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण और मानवीय मूल्यों का भी समावेश होना चाहिए । यदि आधुनिक आर्थिक नीतियों में इन सिद्धांतों को शामिल किया जाए तो अधिक संतुलित और समावेशी विकास संभव हो सकता है।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में प्रस्तुत आर्थिक विचार आज भी प्रासंगिक हैं और आधुनिक आर्थिक समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।इन विचारों में आर्थिक विकास को नैतिकता, सामाजिक न्याय और पर्यावरण संरक्षण के साथ जोड़ा गया है। वर्तमान समय में आवश्यकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा के इन सिद्धांतों का अध्ययन और पुनर्प्रयोग किया जाए ताकि एक संतुलित और टिकाऊ आर्थिक व्यवस्था का निर्माण किया जा सके। भारतीय ज्ञान प्रणाली में आर्थिक विचार नैतिकता, सामाजिक दायित्व और पर्यावरणीय संतुलन पर आधारित हैं। यह दृष्टिकोण आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में अत्यंत प्रासंगिक है, जहाँ आर्थिक विकास के साथ सामाजिक न्याय और पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। भारतीय आर्थिक चिंतन समावेशी, संतुलित और मानव-केंद्रित विकास का वैचारिक आधार प्रदान करता है।

संदर्भ

1. शमाशास्त्री, आर. (अनुवादक). (1915). कौटिल्य का अर्थशास्त्र. मैसूर प्रिंटिंग एंड पब्लिशिंग हाउस।
2. रंगराजन, एल. एन. (1992). कौटिल्य: अर्थशास्त्र. पेंगुइन बुक्स।
3. थापर, रोमिला. (2002). प्रारंभिक भारत: उद्गम से 1300 ईस्वी तक. पेंगुइन।
4. गांधी, महात्मा. (1931). ट्रस्टीशिप. नवजीवन पब्लिशिंग हाउस।
5. अल्तेकर, ए. एस. (1958). प्राचीन भारत में राज्य और शासन. मोतीलाल बनारसीदास।
6. दासगुप्ता, बी. (1993). भारतीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था का संसार. सेज पब्लिकेशन्स।
7. जैन, एच. (2019) प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन।